भारतीय संस्कृति के मूल तत्व

प्रो. भागवत् शरण शुक्ल

वेदों में भारतीय संस्कृति को विश्ववारा कहा है। **विश्वं वृणोति आत्मसात् करोति स्वोच्चनियमैः या सा विश्ववारा''** अर्थात् जो अपने मानवमूल्य के सर्वोच्च आत्मकल्याण कारक आदर्श रूप नियमों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अलोकित करे उस संस्कृति को विश्ववारा संस्कृति कहते हैं। इस भारतीय संस्कृति के प्रथम मूल तत्व हैं पुरूषार्थ चतुष्टय– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म शब्द से केवल वेद प्रतिपाद्य मूल सनातन धर्म ही गृहीत होता है। विश्व में धर्म शब्द से इसके अतिरिक्त अन्य किसी का बोध होता ही नहीं। अन्य सभी सम्प्रदाय ही उपचारातः धर्म पद वाच्य होते हैं मूख्यतः यही सिद्धांत है। शतपथ ब्राह्मण कहता है – **''एष धर्मो य एष तपत्येष हीद 20 सर्व धारअत्येनेदं 10 सर्व धृतम्''।** अर्थात् यह धर्म ही है जो सभी को परोपकारक नियमों से तपाकर अर्थात् व्यवस्थित कर सभी को धारण करता है परोपकारक त्यागमय उदार सुशील जीवनपद्धति में स्थापित करता है। इसीलिए सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड के धारण करने के कारण इसे धर्म कहा जाता है।

जो सम्प्रदाय सार्वभौम हित चिन्तन की ही बात करते है। प्राणिमात्र के हित की बात करते हैं वे भी धर्म माने जा सकते हैं धर्म के स्वरूप धारण करने के कारण उनके मारने, काटने, भक्षण करने की बात नहीं करते, केवल स्ववर्ग अतिरिक्त संसार के किसी भी मानव या अन्य प्राणी का चेहरा तभी देखना चाहेंगे कि वह उनके वर्ग का हो जाय या दास हो जाय। अन्यथा उनका बध्य है भक्ष्य है। ऐसे सम्प्रदाय धर्म हो ही नहीं सकते है। इसे पूर्व की भाषा में राक्षसी संस्कृति कह सकते हैं।

ब्रहावैवर्तपुराण में कहा गया है– **''वेदप्रणिहितं कर्म धर्मस्तन्मलं परम्।।''** अर्थात् वेद में प्रतिपादित कर्म को धर्म कहते हैं जो अखिल ब्रह्माण्ड का कल्याण कारक होने से परममडल होता है।

महाराज मनु कहते हैं कि वेद, सम्पूर्ण वेदानुगामिनी सभी स्मृतियों, उनके जानने वाले श्रेष्ठ विद्वानों का आचार तथा सम्पूर्ण प्राणियों के हिन्तन चिन्तन से आत्मतुष्टि ये सभी धर्म है। धर्म के सभी सिद्धान्त वेद में कथित होने से वेद सर्वज्ञानमय होने से इसमें कथित सभी सिद्धांत धर्म हैं–

''वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।
यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ।।

महाराज मनु ने धर्म के दश स्वरूप बतलाया है' धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध।

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमकोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य ने भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्दियनिग्रह, दान, दया, दम, शांति को सभी के धर्म का मुख्य साधन कहा है। सभी अर्थात् मनुष्य मात्र के लिए सर्वथा में अनुपालनीय हैं–

'' अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियर्निग्रहः।
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनाम् ।।

श्रीमद्भागवत में धर्म के स्वरूपों की गणना 30 मानी गई है– सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, ईक्षा (आत्मदर्शन) शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग स्वाध्याय, आर्जव संतोष, समदर्शित्व, सेवाभाव, शनैः ग्राम्येहोपरम (अश्नीलचेष्टाभाव) मानवों की विपर्ययेहेक्षा (विपरीतेच्छा का अभाव) मौन, आत्मविमर्शन, प्राणिओं में परमात्मा के यथार्थतः अन्नादानन्ता का सं वि भाग, सभी मानवों में आत्मबुद्धि अथवा देवताबुद्धि, ईश्वरगुणश्रवण, गुणकीर्त्तन, महानों की गति का स्मरण, महानजनों की सेवा सम्मान, विनम्रभाव, ईश्वर के प्रति सदैव दास्यभाव, प्राणिमात्र के प्रति सख्यभाव, सर्वदा ईश्वरात्म समर्पण अर्थात् शरणागति ये माने गए हैं –

''सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेहा क्षमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।1।।
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां वियर्ययेहेक्षा मौनमात्माविमर्शनम् ।।2।।
अनायद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्थतः।

तेवात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्त्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्या नतिर्दाख्यां सख्यमात्यमर्पणम्।।
नृणामयं परौधर्मः सर्वेषां समुदाहतः।।
त्रिंशललक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ।।

इस प्रकार समाज, राष्ट्र स्वात्म उपकारक कर्म धर्म के नाम से व्यवहार में सम्पूर्ण समाज में, राष्ट्र में विद्यमान है।

अर्थ शब्द से सामान्यतया लोग धन सम्पत्ति आदि का ग्रहण करते हैं। परन्तु यदि इसका मुख्यार्थ पूछा जाय तो सभी को दिक्कत होती है। अर्थशास्त्र में यद्यपि पृथक् रूप से अर्थ शब्द का लक्षण नहीं बताया गया तथापि प्रथम प्रकरण में जिसे **विनयाधिकरण** कहा जाता है इसमें इसके प्रभेदों में इस की गणना समुद्धेश के रूप में आई है। नाम मात्र से वस्तु का संकीर्तन या गणना समुद्देश कहा जाता है। (नाममात्रेण वस्तु संकीर्त्तनं समुद्देशः– तर्कसंग्रह पदकृत्य) अर्थ शास्त्र के टीकाकर टी गणपति शास्त्री अपनी मूला नामक टीका में प्रारम्भ में ही कहते हैं– **"अर्थो नाम वृत्तिः वर्तनं स्थितिः, सैव हि मनुष्याणां मुख्योऽर्थः। तथा च मनुष्यसम्बन्धिन्या तदाधारभूता भूमिरुपलक्ष्यते। एज्च मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः। तस्याः लाभपालनोपायोपदेशकानि शास्त्राणि अर्थशास्त्रणि।"** अर्थात् अर्थ का नाम है वृत्ति प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्ति अर्थात् कार्यविशेष से जीवन का व्यवहार करता है। इसलिए वही उनका मुख्य अर्थ माना जायेगा। उस वृत्ति से वृत्ति की आधार भूता पृथिवी उपलक्षित होती है। अतः मनुष्यवती भूमि ही अर्थ है।

इस अर्थ का भी मुख्य नियंत्रक धर्म है। धर्म के बिना अर्थ की शुचिता बन नहीं सकती। सार्वभौम हित चिन्तन नहीं हो सकता। एतदर्थ धर्मानुमोदित धर्मार्जित धन ही अर्थ शब्द से गृहीत होता है। अन्याय से प्राप्त अन्याय में विनियुक्त अर्थ अनर्थ है। अतएव प्रथम प्रकरण में अर्थ की शुचिता स्थापन हेतु सर्वप्रथम कौटिल्य ने विद्यासमुद्देश, वृद्धसंयोग, इन्द्रियजय, अमात्योत्पत्ति आदि का उल्लेख किया है।

यद्यधि धर्म के साधन में सत्त्व गुण का प्रधान्य रहता है तथा अर्थ के विषय में राजस का भी संयोग होना आवश्यक है। अत एव महाराज मनु अर्थ को परिभाषित करते है–

" तमसो लक्षणं कामो राजसस्त्वर्थ उच्यते।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम्।।9।।

अर्थात् काम का स्वरूप तामस, अर्थ का स्वरूप राजस तथा धर्म का स्वरूप सात्विक है। इसलिए इनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।

आचार्य वात्स्यायन ने भी अपने कामसूत्र ग्रंथ में अर्थ की परिभाषा इस प्रकार दी है– **"विद्याभूमि हिरण्यपशुधान्यभाण्डोपरस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः। तमध्यक्षप्रचाराद् वार्ता समयविद्भ्यो वार्णिग्भ्यश्चेति।"** अर्थात् विद्या, भूमि, स्वर्ण, पशु, धान्य, भाण्डोस्कर (गृह तत्सम्बन्धी सकल वस्तु विशेष) मित्र मण्डली आदि का अर्जन और अर्जित का संवर्धन अर्थ है और उस अर्थ का संग्रह अध्यक्ष प्रचार (उपदेश प्रवचन) आदि से वार्ता शास्त्र आदि से शास्त्रसिद्धांत ज्ञानियों से कृषि पशु वाणिज्य आदि कर्म से उस अर्थ का परिवर्धन करना अर्थ है। यही धर्मानुमोदित धर्मार्जित प्राणिमात्र के कल्याणार्थ विनियुक्त अर्थ पुरूषार्थ के रूप में परिणणित होता है।

अर्थ के पश्चात् तृतीय पुरूषार्थ काम है। काम शब्द से किसका ग्रहण सामान्य रूप से करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य वात्स्यायन अपने कामसूत्र में देते हुए लिखते हैं–?

"श्रोत्रत्वकृचक्षुर्जिहवाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिण्ठितानां स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः। स्पर्शविशेषविषयात्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात् कामः।"

अर्थात् कान त्वगिन्द्रिय चक्षु जिह्वा नासिका आदि इन्द्रियों के आत्म संयुक्त मन से अधिष्ठितों में अपने– अपने विषय में अनुकूलता से प्रवृत्ति, को विषयों के उपभेग को काम कहते है। वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ (जननेन्द्रिय) रूप कर्मोन्द्रियों के द्वारा स्पर्श विशेष से विषय में प्राप्त अभिमानिक सुख युक्त फलवती अर्थ प्रतीति प्रधानतः काम कही जाती है। यह काम भी धर्मानुमोदित ही पुरूषार्थ के रूप में माना जाता है। इसीलिए वात्स्यायन ने काम सूत्र शास्त्र के प्रारम्भ में सम्पूर्ण जीवन को उदात्त बनाने के लिए शास्त्रादि ज्ञान पर बल देते हैं। और कहते है कि धर्म अधर्म आदि का ज्ञान मानव को प्रथमतया करने के लिए वेद शास्त्रादि ज्ञान रूप अर्थ का अर्जन करना चाहिए– **"बाल्ये विद्याग्रहाणा दीनर्थान्" (2/12)**

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा है **"धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भारतर्षभ।"** अर्थात् धर्म से अविरूद्ध काम साक्षात् मेरा स्वरूप है। इसलिए धर्मविरूद्ध धर्मानुमोदित लोककल्याणकारण काम ही पुरूषार्थ के रूप में ग्रहण किया जाता है।

चतुर्थ पुरूषार्थ मोक्ष है। जिसका मुख्य प्रतिपाद्य आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति है **मोक्ष्यते दुःखमनेन आसौ मोक्षः।** यद्यपि प्रत्येक दर्शनों में मोक्ष के विभिन्न स्वरूप अपने अपने सिद्धांत के अनुसार वर्णित हैं तथापि सभी के मूल में आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति ही विद्यमान हे। सामान्यतः भगवान् श्रीमन्नाराण के प्रति सर्वतोभावेन। शरणागत होकर उनके चरणों में कृत–अकृत, संचित प्रारब्ध सभी कर्मों का समर्पण कर यावत् शरीर भगवन्मय भाव में स्थिर हो परमात्मा की प्राप्ति ही मोक्ष भाव है। जिससे जीव का जन्म मरण रूप जो कर्म प्राप्त बन्धन हैं वे समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि शरीर धारण विविध योनियों की प्राप्ति, सुख दुःख की प्राप्ति में पुण्य पाप रूप अदृष्टोत्पादक विविध कर्म ही कारण हैं। अतः सभी कर्मों का समर्पण कर निष्काम भाव से भगवत् प्रीत्यर्थ कर्म करता हुआ भी व्यक्ति कर्मबंधन में न रहता हुआ। अन्त काल में भगवान् को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

इन चारों पुरूषार्थों के सेवनार्थ भारतीय परम्परा में मानव की चार अवस्थाएँ तत्वतः स्वीकार की गई है। बाल्यावस्था जो ज्ञान, कला, शरीर संवर्धन की अवस्था है इसी अवस्था में जन्मधारण के पश्चात् मानव विविध विद्याओं कलाओं का ज्ञान करता हुआ स्वस्थ बलिष्ठ सुन्दर शरीर का निर्माण कर त्रिवर्ग साधन का अधिकारी होता है। धर्म का तात्त्विक ज्ञान इसी अवस्था में किया जाता है। द्वितीय यौवनावस्था में मानव धर्म के साथ अर्थ एवं काम पुरूषार्थ का सेवन करता हुआ कुल, समाज, राष्ट एवं विश्व को समृद्ध करता है। तृतीयावस्था में अपने अनुभव, प्रौढज्ञान के द्वारा समाज का कल्याण करता हुआ उसमें उदात्तता की स्थापना करता हुआ अध्यात्म साधना की ओर अग्रसर होता है। चतुर्थावस्था में उस परम तत्व में अपने को लीन कर के चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है। फलतः ये चारों अवस्थाएँ बाल, यौवन, प्रौढ तथा वृद्ध भी भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व है।

मानवों की इन चारों अवस्थाओं को उदात्त स्वरूप प्रदान करते हैं संस्कार। **"संस्क्रियते दोषेऽपनीयते अतिशयगुण आधीयते हीनाङं पूर्यते अनने असौ संस्कारः।"** अर्थात् जिनके द्वारा दोषों को हटाया जाय, उत्तम गुणों को स्थापित किया जाय हीन अंश की पूर्णता कर सम्पूर्ण परमग्राह्य स्वरूप बनाया जाय उसे संस्कार कहते हैं। वीरमित्रोदयकार कहते हैं– **आत्मशरीरान्यतर निष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय विशेषः संस्कारः"** अर्थात् आत्मा तथा शरीर में वेद विहितक्रिया से उत्पादित अतिशयविशेष गुण संस्कार शब्द से जाना जाता है। तात्पर्य यह कि संस्कारों से आत्मा एवं शरीर दोनों में अतिशय गुणों का आधान किया जाता है। भारतीय परम्परा में ये संस्कार यद्यपि अनेक संख्याओं में माने जाते हैं तथापि सर्वमान्य संख्या इनकी सोलह है। वैसे महर्षि गौतम ने चालीस तथा महर्षि जातुकर्म तथा व्यास ने सोलह, सोलह और मनु तथा गृह्यसूत्रकार ने चौदह तथा तेरह क्रमशः स्वीकार किए है। मुहूर्तचिन्तामणि के संस्कार प्रकरण में गर्भधान से विवाह पर्यन्त 20बीस संस्कारों के मुहूर्त दिए गए हैं।

इन संस्कारों को पांच श्रेणियों में स्थापित किया जा सकता है।

(क) जन्मपूर्व संस्कार – इसके अन्तर्गत

1. गर्भधान 2. पुंसवन 3. सीमन्नतोनयन ये तीन संस्कार हैं। इन्हीं में उपसंस्कार के रूप में अनवलोभवन तथा विष्णुबलि की गणना होती है।

(ख) उपनयनपूर्व संस्कार – इसके अन्तर्गत 1. जातकर्म 2. नामकरण 3. निष्कमण 4. अन्नप्राशन 5. चूडाकरण 6. कर्णवेघ ये छः संस्कार आते है। इसी में अक्षरारम्भ विद्यारम्भ संस्कार भी परिगणित होते हैं।

(ग) द्विजत्वाधयक गृहस्थप्रवेशादि संस्कार– इसके अन्तर्गत 1. उपनयन 2. वेदारम्भ 3. समावर्तन 4. विवाह 5. अगन्याधान संस्कार आते हैं। इन्हीं के अन्तर्गत केशन्त कर्म विधान गार्हपत्याग्नि, श्रौताग्नि आदि अग्नि के आधान के भी संस्कार आते हैं।

(घ) विवाहोत्तर संस्कार इसके अन्तर्गत 1. वानप्रस्थ 2. संन्यास ये दो संस्कार आते हैं।

(ड) अन्त्येष्टि संस्कार– इसके अन्तर्गत शरीरप्राणवियोग की सन्निकट अवस्था से लेकर न्यूनातिन्यून दो वर्ष तक किये जाने वाले सम्पूर्ण श्राद्ध कर्म माने जाते हैं। ये सभी संस्कार हमारी भरतीय संस्कृति के परम धरोहर है। इनके अतिरिक्त परम्परा से तत् तत् वंशों में कुलाचार, में देश में विद्यमान संस्कार सम्मिलित है। ये सभी भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं।

इसके पश्चात् है सामाजिक संस्कृति का मूलतत्व है जाति वर्ण व्यवस्था। जिसका उदात्त स्वरूप हमारी सम्पूर्ण भारतीय परम्परा के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सभी वेद विरूद्ध परम्परा विरूद्ध दुर्गानवों के द्वारा उसी के समूलोच्छेद एवं दृष्प्रचार का पूर्ण प्रयास तथाकथित लेखकों एलेण्ट्रानिक मीडिया प्रिंट मीडिया, सिनेमा, धारावाहिकों के द्वारा तथा कथित राजनेताओं के द्वारा किया जा रहा है।

भारतीय वर्ग व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र मे ंचार वर्ण हैं। ब्राह्मण पूर्ण सात्विक गुणों के द्वारा भारतीय वेद शस्त्र कलादिज्ञान सम्पत्ति का पूर्ण ज्ञान कर अध्ययन–अध्ययापन लेखन सदाचार व्याख्यान उपदेश के द्वारा ज्ञान सम्पत्ति का संरक्षण कर अपनी उदात्त परम्परा से भारतीय संस्कृति की मूलभूत परम्परा का ज्ञान सभी को

कराता है। क्षत्रिय सात्विकता के साथ साथ वेद शास्त्रादि का पूर्ण ज्ञान कर समाज राष्ट्र को प्रशासित करते हुए सब की रक्षा का उत्तर दायित्त्व निभाता है। वैश्य वेद शास्त्रादि का अध्ययन कर वाणिज्य वृत्ति, कृषि, वृत्ति, गो आदि पशुपालन वृत्ति से सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट को परिषोषित करता है। शुद्र धर्मशास्त्र पुराण कला आदि ज्ञान के द्वारा अपने जीवन को उदत्त बनाता हुआ ब्राह्म्ण, क्षत्रिय, वैश्य के कर्मों में अपना महत्वपूर्ण योगदान करता हुआ अपने विविध शिल्प आदि कार्यों से सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र को पोषित करता है उसकी रक्षा करता है। यद्यपि भारतीय संस्कृति में ये चार वर्ण या जातियां हैं इन्हें से भारतीय समाज पूर्ण संगठित एवं व्यवस्थित है तथापि ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के कर्म सीमित होने के कारण इनके वर्ण एवं जाति में परिवर्तन नहीं हुए। इसलिए ब्राह्मणवर्ण एवं ब्राह्ममण जाति, इसी प्रकार क्षत्रियवर्ण एवं जाति सामान्येन पर्यायत्वेन गृहीत होते हैं। किन्तु वैश्य एवं शूद्रों के विविध कर्म होनें से इनमें अनेक उपजातियां हो गई। जैसे वाणिज्य कर्म करने वाले मात्र कृषि कर्म करने वाले मात्र पशुपालन कर्म करने वाले परम्परा में विद्यमान है जिनकी प्रदेश विशेष में भिन्न–भिन्न उपजातियां हैं वे सभी वैश्य है। निकृष्ट पशु यथा मेष (गाडर) सुअर आदि पालनकर्त्ता इस श्रेणी में नहीं हैं। इसी प्रकार सभी शिल्पकर्म करने वाले चाहे उनका जो भी शिल्प हैं सभी शुद्र के अन्तर्गत माने जाते हैं। इसीलिए भारतवर्ष की इस परम्परा में कोई भी बेरोजगार नहीं है। क्योंकि सभी को जन्म से ही रोजगार प्राप्त है। उसी से उनका सुव्यवस्थित जीवन यापन होता है।

इस वर्ण एवं जाति व्यवस्था में न तो कोई ऊँचा है और न ही कोई नीचा। सभी अपने–अपने कर्म के विषय में अपनी संस्कृति संरक्षण के विषय में सर्वोच्च तथा कर्महीन आचारहीन होने से सभी नीच होते हैं। सबका मार्गदर्शन एवं सर्वथा हितचिन्तन में संल्लग्न होने से ब्राह्मण का सभी वर्ग के मानव अधिक सम्मान करते थे या करते हैं। इसी प्रकार समाज तथा राष्ट हेतु अपना जीवन न्यौछावर करने वाले इन क्षत्रियों का ब्राह्मण आदि सभी वर्ग के लोग सम्मान करते थे। तथैव जीवन निर्वाह हेतु सभी वस्तुओं उपलब्ध कराने के कारण इन वैश्यों का भी ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं शुद्र सभी सम्मान करते थे। तथैव शुद्रों का भी अपने अपने कर्म से, शिल्प से समाज तथा राष्ट्र की सेवा करने से ब्राह्ममण आदि सभी उनका सम्मान करते थे। सभी में परस्पर कुटुम्ब जैसा व्यवहार आज भी ग्रामीण अञ्चल में दृष्टिगोचर होता है। जिसमें निम्न वर्ग का व्यक्ति भी उच्च वर्ग के व्यक्ति का भाई, चाचा, बाबा, नाना, मामा आदि लगते है। तथैव उनका सम्मान होता है। यह कुल भी कुटुम्ब है, समाज भी, राष्ट्र भी, विश्व भी कुटुम्ब है इस भारतीय संस्कृति में। इसीलिए भारतीय संस्कृति में कहा गया है–

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

सम्पूर्ण विश्व में कुटुम्ब भावना उसमें परमात्मा का भाव होना अपने अपने कर्मों से समाज तथ राष्ट्र की विश्व की सेवा करना, स्वसनातन धर्म की परम्परा की सर्वस्व निछावर करके भी रक्षा करना भारतीय संस्कृति परम का मूलतत्व है।

संदर्भ

01) शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा ।।7।14।।
02) शतपथ ब्राह्म्ण 16.2.21
03) शब्द कल्पपुत्र से उद्घृत
04) मनुस्मृति 2।6,7।
05) मनुस्मृति 6।12
06) याज्ञवल्क्य स्मृति 8।122
07) श्रीमद्भागवत ।।7।12।8
08) अर्थशास्त्र पृ. 1,2।।
09) मनुस्मृति 12।38।।
10) कामसूत्र पृ. 12,13,14,15।
11) कामसूत्र पृ. 14
12) कामसूत्र पृ. 15
13) कामसूत्र 2/12
14) गीता 7।11
15) वीर्रमित्रोदय पृ. 111
16) गौतमस्मृति– संस्कार प्रकारण,
17) जातुकर्म स्मृति– संस्कार प्रकरण
18) मनु स्मृति– संस्कार प्रकरण
19) गृह्ययूत्र– संस्कार वर्ण ने
20) मुहूर्तचिन्तामणि संस्कार प्रकरण
21) हितोपदेश 1।68।।

– विभागाध्यक्ष व्याकरण विभाग
फेकल्टी संस्कृत विघा धर्म विज्ञान
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (बी.एच.यू)